Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 12, Issue 1 | May 2024 - October 2024 | pp. 7-11

सफर एक डोंगी में डगमग : नदी संस्कृति का आख्यान

अनिल कुमार

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, धौलपुर (राजस्थान)

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

यात्रा करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यात्रा ही मनुष्य को गति प्रदान करती है। इसलिए यात्रा से जीवन का क्रमिक विकास होता है। यात्रा करते-करते लोग अपने अनुभवों को वाणी देते हैं, तो वह साहित्य एवं संस्कृति की संपत्ति बन जाते हैं। संस्कृति मानवीय जीवन का प्राण है। जिससे वह अलग नहीं हो सकता। मनुष्य अपनी संस्कृति के बारे में जानना चाहता है जिसके अन्तर्गत धर्म, ज्ञान, कला, विश्वास, प्रथा, कानून, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, वास्तुकला आदि शामिल हैं। संस्कृति का रूप प्रकृति का ही रूप है। प्रकृति भी समाज का हिस्सा है। अतः प्राकृतिक उपादान भी संस्कृति के निर्माण कारक तत्त्व हैं। इन तत्त्वों में वन, नदी, पर्वत, सागर, मैदान, झील आदि शामिल हैं। इन प्राकृतिक तत्त्वों में से नदी संस्कृति से साक्षात्कार करने हेतु राकेश तिवारी दिल्ली से कोलकाता तक नाव से यात्रा करते हैं। उनके द्वारा अपनी यात्रा के दौरान नदी किनारे के गाँव, कस्बे, नगरों के लोगों के इतिहास, भूगोल, रीति-रिवाज, त्योहार, मेले, विश्वास, धर्म, मान्यताएँ, खान-पान, रहन-सहन, विवाह, लोकगीत, लोक नृत्य, सामाजिक जीवन आदि सांस्कृतिक पहलुओं का चित्रण किया गया है एवं उनमें होने वाले परिवर्तनों को भी रेखांकित किया है। साथ ही यह भी चित्रित किया है कि आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति से ये लोग कितने प्रभावित हो रहे हैं एवं इनके रीति-रिवाज, खान-पान व रहन-सहन में क्या-क्या अंतर आये हैं?

संकेताक्षर—*नदी संस्कृति, कृषि जीवन, ग्रामीण जन-जीवन, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, अथिति सत्कार, प्रदूषण*

प्रस्तावना

आदिकाल से ही मनुष्य और प्रकृति के बीच घनिष्ठ संबंध रहा है। प्रकृति के विविध घटकों ने मानव संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिनमें नदियों का महत्त्व अन्यतम है। विभिन्न सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे ही हुआ है। नदियों ने ही मनुष्य को अपनी सभ्यता का विकास करने के संसाधन उपलब्ध कराये हैं। नदी और मानव के अनन्य संबंधों को उजागर करने वाला यात्रा वृत्तांत राकेश तिवारी का 'सफर एक डोंगी में डगमग' है। इस यात्रा वृत्तांत में लेखक ने नदी संस्कृति का आख्यान प्रस्तुत किया है। नदी संस्कृति समाज के ऐतिहासिक विवरण ही नहीं अपितु सामाजिक सांस्कृतिक विवरण भी विश्लेषित करती है। लेखक ने दिल्ली से कोलकाता तक नाव से यात्रा की है। नदी के किनारे पड़ने वाले गाँव, कस्बे व नगर एवं उनकी संस्कृति का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। इसमें लेखक ने रास्ते के इतिहास, भाषा, संस्कृति और जीवन के अनेक पक्षों पर बखूबी ध्यान दिया है। उन्होने अपना यह सफर 62 दिनों में पूरा किया है। यह यात्रा वृत्तांत जितना रोमांचक है उतना ही मजबूत इसका ऐतिहासिक व भौगोलिक पक्ष है। यह यात्रा वृत्त उत्तरी-पूर्वी भारत की बदलती भौगोलिक संरचना, संस्कृति एवं बोलियों को समझने में एक विशिष्ट दस्तावेज की तरह है। पल्लव अपने लेख 'यात्राओं का देश' में लिखते हैं—"'सफर एक डोंगी में डगमग' नाव में दिल्ली से कलकत्ता (अब कोलकाता) की रोमांचक यात्रा का वर्णन है जिसमें रास्ते के इतिहास, संस्कृति, भाषा और

जीवन के अनगिनत पक्षों पर लेखक का ध्यान जाता है। दिल्ली की 'ओखला हेड' जैसी छोटी सी नहर से शुरू कर वे मथुरा, आगरा, इलाहबाद, बनारस, कानपुर और पटना होते हुए कोलकाता की हुगली में पहुँचते हैं।... तिवारी का यह आख्यान रोमांचक, शिक्षाप्रद और साहित्य का महत्त्व दर्शाने वाला है।"[1] इस यात्रा वृत्तांत में नदी संस्कृति के सफर के महत्त्व को दर्शाते हुए डॉ. कीर्ति माहेश्वरी अपने लेख 'चरथ भिक्खवे चरथ' में लिखती हैं "इस कड़ी में भारतीय समाज को जानने का, अनेकों नदियों यथा—चम्बल, यमुना, गंगा, टोंस, सोन, हुगली आदि किनारे बसे शहरों, गाँवों के जीवन को जानने, समझने और भारतीय ग्रामीण जीवन को नजदीक से देखने का प्रयास है—'सफर एक डोंगी में डगमग'।"[2] ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन में अतिथि को बहुत ही सम्मान व महत्व दिया जाता है, वह स्वयं भूखा सो जाएगा लेकिन अतिथि की आव-भगत में कोई कसर नहीं रखेगा। लेखक ने अपने सफर के दौरान मिलने वाले अतिथि सम्मान एवं सुरक्षा की भावना को प्रस्तुत किया है। "उनके साथ गाँव वालों के उपहार-रोटी-घी-आचार-दूध भी आया। कोई परदेशी भोजन पाए बिना गाँव की सरहद में कैसे सो जाता?"[3] वह रात में जहाँ भी रुकते वहाँ सुहृदय गाँववालों की भीड़ एकत्र हो जाती एवं गाँव चलकर भोजन करने का आग्रह करते। मना करने पर भी रोटी, मक्खन, तरकारी, आचार व दूध ले आते। उनका मानना था कि अतिथि भूखा न रह जाए।

लेखक चम्बल में यात्रा करने के दौरान यहाँ की दस्यु समस्या के संबंध में भी पड़ताल करता है। उसका मानना है कि यहाँ के लोगों में कठोरता का कहीं भी आभास नहीं है। वह लिखते हैं "कठोरता का कहीं आभास नहीं जिसके लिए यह घाटी सारे जग में बदनाम है। आदमी तो आदमी। फिर चाहे डाकू हो या साधु। बिना वजह पागल ही किसी को मारता है । मौका पड़े तो साधु भी हिंसक बन सकता है। चम्बल वालों की हिंसा के पीछे बहुत से आर्थिक, सामाजिक और ऐतिहासिक वजहें हैं, वरना आम तौर पर कोई भी घर-बार, बीबी-बच्चों को छोड़ कर बागी बनना पसंद नहीं करता, और न किसी को मारना ही चाहेगा।"[4] लेखक ने अपनी यह यात्रा अस्सी के दशक में की थी, तब वास्तव में पूरी चम्बल घाटी में दस्यु समस्या एक प्रमुख समस्या थी लेकिन वर्तमान में इस प्रकार की समस्या नहीं है, डकैत संस्कृति अतीत की बात हो गई है। यह स्थान आगे बढ़ चुका है लेकिन समाज में जो समस्याएँ हैं, वे अभी भी मौजूद हैं। अब यह घाटी घड़ियाल अभयारण्य के लिए प्रसिद्ध हो चुकी है एवं पर्यटकों का आवागमन भी शुरू हो गया है। अपनी यात्रा के दौरान वह मछुहारों के सम्पर्क में आये जिनके जीवन का चित्रण करते हुए वह कहते हैं कि बनारस के मछुहारे चंबल में मछली पकड़ने के लिए धौलपुर तक आते हैं "चम्बल के सूने तट पर खड़े इनके छोटे-छोटे तम्बू, सूखते जाल, बालू खोदकर बनाए गए चूल्हे, उन पर चढ़े एल्मूमिनियम के बर्तन, इधर-उधर बिखरी पड़ी मछलियाँ, उनके कटे-पिटे टुकड़े, इन सबके बीच खाना खाते बच्चे, जाल सीते या उसे बालू पर फैलाते मत्स्यजीवी बच्चे, बूढ़े और जवान उत्सुकता भरे लगे।"[5] यमुना में प्रदूषण को देख कर लेखक चिंतित होते हैं एवं इसके कारणों की खोज करते हुए लिखते हैं "यमुना की इस दशा के सबसे ज्यादा जिम्मेदार हम ही हैं। आज से करीबन साढ़े छह सौ बरस पहले इसके शोषण का सिलसिला शुरू हुआ-मुगलों ने इससे पहली नहर निकाली। इसके चार सौ बरस के अंदर ही दोआब की सिंचाई के लिए ऊपरी प्रवाह से बड़ी नहर निकालने के लिए बहुतेरा जल खींच लिया गया। फिर, ओखला (दिल्ली) से 'आगरा-नहर' क्या निकाली उसे पूरी तरह लूट ही लिया। नतीजा यह कि बरसात के अलावा सारे बरस यमुना छोटे-छोटे नदी-नालों की मुहताज है। सैकड़ों बरस तक यमुना-जल के बल पर बढ़े-चढ़े दिल्ली, आगरा, मथुरा जैसे नगरों के बाशिंदों ने ही शहर भर का जहर नालों में समेटकर यमुना को पिला दिया। इसलिए आज यमुना अपनी दुर्दशा पर आठ-आठ आँसू रोती है और बरसात में मौका पाते ही पाटों पर दौड़ती आर-पार के लोगों को कालिय नाग जैसा डसती है।"[6] यमुना में प्रदूषण की समस्या वास्तव में ही बड़ी ही भयावह है। इस संबंध में 'जनसत्ता' दैनिक समाचार पत्र में खबर प्रकाशित होती है-"औद्योगिक इकाइयों के प्रदूषण से यमुना का पानी दिल्ली से पहले सोनीपत से ही प्रदूषित होने लगता है। जानकारी के मुताबिक यमुना नदी राष्ट्रीय राजधानी में प्रवेश बिंदु (पल्ला) से लेकर दिल्ली से बाहर निकलने तक यानी असगरपुर के बीच कुल क्षेत्र करीब 54 किलोमीटर है। इस बीच नदी का पानी न तो कहीं डुबकी लगाने लायक है और न ही आचमन करने योग्य।"[7] यमुना प्रदूषण के संबंध में 'नवभारत टाइम्स'

लिखता है कि "एनजीटी ने माना कि यह समस्या बहुत गंभीर है और नदी तल का हाल महासागरों की स्थिति से कहीं ज्यादा खराब है। ...गंगा की प्रमुख सहायक नदी यमुना में 76 फीसदी प्रदूषण केवल दिल्ली की वजह से है।"[8] आगरा-मथुरा तक आते-आते यमुना नदी में प्रदूषण की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

लेखक प्राकृतिक सौंदर्य चित्रण की कड़ी में नदी के सौंदर्य का चित्रण करते हुए लिखते हैं—"विविधधर्मी सौन्दर्य समेटे पसरे पाट पर तह-दर-तह जमी बलुआ परतों का रंग कहीं बैंगनी, कहीं सलेटी, सफेद, चमकीला और कहीं हलका गुलाबी। दिनभर झपाटे मारते लूह ने बालुका राशि को इस तरह जमाया था कि छोटे-छोटे टीले और गड्ढे और उन पर रंग-बिरंगी खूबसूरत तहें जम गई थीं।"[9] लेखक गोस्वामी तुलसीदास की जन्मस्थली राजापुर गाँव जाते हैं तो वहाँ पुजारी उन्हें बाबा तुलसी के हाथ की लिखी प्राचीन पांडुलिपि दिखाता है। वह नाव चलाने वाले केवटों के धंधे में संबंध में देखते हैं कि किस प्रकार से उनका धंधा चौपट हो गया है, अब सारी कमाई बड़े ठेकेदारों की जेब में जाने लगी है, "पार उतारने का सारा धंधा पहले केवटों के हाथ था.......फिर आया घाट नीलामी का तरीका, उतराई के पैसे पड़ने लगे। त्योहारी-फसली बंद होने लगी। दोनों ओर से मारे गए। परम्परागत जीविका रही नहीं, नई व्यवस्था में उनका हिस्सा नगण्य। धनीमानी लोग धन-डंड के दम पर ठेका कब्जियाने लगे। नदी के परम्परागत हकदारों की आय का अकेला साधन छिन गया। दूसरे कामों के रास्ते उनके लिए बंद। चलानी उन्हें अब ही नाव पड़ती है लेकिन आय ठेकेदारों के हाथ।"[10]

वह संगम पर धार्मिक आस्था का चित्रण करते हैं कि लोग संगम में डुबकी लगाने के लिए अधीर हैं, वह दूर से ही कपड़ा उतारते हुए नजर आते हैं। जोर-जोर से तरह-तरह के श्लोक पाठ विशिष्ट धार्मिक वातावरण की सृष्टि कर रहे हैं। लौटती नावों पर चंदन लगाये हुए, छोटे शीशों में केश संवारते, गीले कपड़े फैलाते लोग और पानी चूते कृष्ण केश छितराते, कपड़े निचोड़ती युवतियाँ-प्रौढ़ाएँ नजर आती हैं। संगम की महिमा के संबंध में वह लिखते हैं "इस संगम की बड़ी महिमा रही है। दुर्वासा, भरद्वाज, राम-लक्ष्मण-सीता, मौर्य सम्राट अशोक, गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त, महादानी हर्षवर्धन, ह्वेनसांग, मुगल बादशाह अकबर, कम्पनी सरकार, गांधी-जवाहर तक कोई इसके आकर्षण से मुक्त न हो सका।"[11] लेखक कल्पवृक्ष व लेटे हुए हनुमान जी के संबंध में बताते हुए किले के प्रख्यात स्तम्भ के विषय में भी लिखते हैं कि इसे अशोक द्वारा गढ़वाया हुआ माना जाता है एवं इस पर अशोक और समुद्रगुप्त के लेख उत्कीर्ण हैं। इस तरह से यह आज से तेईस सौ साल पहले के दो यशस्वी सम्राटों के इतिहास को जानने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

लेखक कुंभ से जुड़ी पौराणिक कथा का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, "सागर मंथन के नौ रत्नों में से अमृत घट अथवा पूर्ण कुंभ भी निकला। देव-दानव दोनों में अमृत पाने की होड़ मच गई। मौका देखकर इन्द्र का पुत्र जयंत कुंभ लेकर भागा। दानवों ने पीछा किया। जयंत बारह दिनों तक भागता रहा। इसी उसने कुंभ को पृथ्वी पर चार स्थानों-गंगा तट पर प्रयाग, गोदावरी तट पर नासिक, और शिप्रा तट पर उज्जैन में रखा। देवों का एक दिन बारह मानवीय वर्षों के बराबर हुआ। इसलिए हर बारह वर्ष पर इन स्थलों पर पूर्ण कुंभ मनाया जाने लगा। इनमें गंगा-यमुना संगम और प्रयाग विशेष महत्वपूर्ण हो गया। कुंभ सुख और समृद्धि का प्रतीक है। गंगा-यमुना सुख-समृद्धि की सवाहिकाएँ हैं, इसलिए नदी देवियों के हाथ में मंदिरों और विवाह पण्डालों के द्वार-स्तम्भों पर और अनेकानेक त्योहारों पर पूर्ण कुंभ बनाए जाने लगे।"[12] कुंभ की प्राचीनता के संबंध में वह उल्लेख करते हैं कि तेरह सौ वर्ष पहले कन्नौज नरेश हर्ष द्वारा इस अवसर पर गौ, वस्त्र, स्वर्ण आदि दान करने का उल्लेख मिलता है। उसके बाद आदिगुरु शंकराचार्य ने कुंभ की महत्ता सदा के लिए सुव्यवस्थापित कर दी। इस तरह संगम के पावन प्रतीक गंगा-यमुना संगम पर आदमी-आदमी, ज्ञानियों, विभिन्न वर्ण, धर्म और विभिन्न भाषाभाषियों के प्रति वर्ष होने वाले मेले की अनोखी परम्परा शुरू हुई।

गंगा नदी के महत्व का वर्णन करते हुए राकेश तिवारी कहते हैं कि गंगा प्राचीन काल से ही उन्नत संस्कृतियों का केन्द्र रही है। इसके किनारे कई गणराज्य बने, साम्राज्य बने, ऋषि-मुनियों ने ठिकाने बनाये। गंगा ने परम आवश्यक जल लोगों को दिया, जमीन दी, उसे हर वर्ष नया कलेवर दिया, आवागमन का मार्ग दिया, हर तरह से मानव जीवन का पालन किया। गंगाजल में विलक्षण गुण भी दिखे-चाहे जब तक रखो नष्ट नहीं होता है। उत्तर भारत की राजनीतिक डोर भी लम्बे समय तक गंगा तट के शासकों के हाथों में रही इसलिए गंगा को विशिष्ट ज्ञान का प्रतीक माना गया है। मानव के प्रत्येक क्रियाकलापों में तन-

मन की शुद्धि के लिए गंगा की उपस्थिति अनिवार्य हो गई। वह लिखते हैं "भारतीय सभ्यता की रग-रग में गंगा समा गई। उत्तर से दक्षिण तक नगरों-गाँवों, नदियों और लोगों के नाम गंगा पर रखे जाने लगे, यथा-गंगापुर, गंगानगर, गंगैकोंडमपुरम, गंगाखेर, गंगावाड़ी, गंगावती, रामगंगा, गोदावरी गंगा, मन्दाकिनी गंगा, क्षीरगंगा और बूढ़ी गंगा, गंगादीन, गंगाराम और गगादत्त इत्यादि। बच्चे का जन्म हुआ, मनौती मानो गंगा की। उपनयन कराने जाओ गंगा किनारे-हरिद्वार-प्रयाग-पाटलिपुत्र। कुछ बड़ा हुआ यज्ञोपवीत के अवसर पर फिर वहीं पहुँचा। सयाना हुआ गुरूकुल पहुँचा गंगा किनारे। विवाह हुआ, गाँठ जोड़ दुलहिन के साथ, स्नान करो काशी-हरिद्वार-कनखल में। मरने से पहले उसकी चाह, मर ही गए तो मुँह खोलकर पान कराया जाता गंगाजल।"[13] यह पंक्तियाँ सनातन संस्कृति के मूल में गंगा का महत्त्व प्रदर्शित करती हैं। इस प्रकार यहाँ की संस्कृति में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक संस्कार-कार्य में गंगा की उपस्थिति रहती है।

लेखक चुनार दुर्ग के विषय में कहते हैं कि यह दुर्ग रानी मछला, आल्हा-ऊदल, पिथौराराय के शौर्य और पराक्रम से जुड़ा हुआ है। इस किले पर कभी प्रतिहार-पाल-गहड़वाल तो कभी बाबर-हुमायूँ-शेर अफगान और अकबर आदि की विजयपताका फहराती रही। अब यहाँ पी.ए.सी. के जवान रहते हैं। ऐसा माना जाता है कि चुनार की पहाड़ी पर भतृहरि ने 'श्रृंगार शतक', 'वैराग्य शतक' और 'नीति शतक' की रचना की। वाराणसी के विभिन्न घाटों का पूरा विवरण देते हुए वह कहते हैं, "वाराणसी के पंच महातीर्थों की महिमा न जानूँ तब तो यह घाट-बेघाट की फेरी ही बेकार। प्रथम असि-संगम, द्वितीय पर हमारा लंगर पड़ा ही है, तृतीय सामने है मर्णिकेश्वर, चतुर्थ पंचगंगा और पंचम पुल पार आदिकेशव।"[14] काशी में एक से एक विद्वान, सिद्ध-महात्मा और गुणियों का वास रहा है। सबकी अपनी-अपनी निराली कथाएँ हैं। वह महापंडित जगन्नाथ की कहानी का भी वर्णन करते हैं कि किस प्रकार माँ गंगा ने उन्हें अपनी गोदी में शरण दी। लेखक महमूदाबाद के पास गाँव की स्त्रियों द्वारा गंगापूजन के लिए आते हुए देखकर उनके द्वारा गंगा जी की पूजा एवं उनके द्वारा गाये जाने वाले गीतों का की चित्रण करते हुए कहता है—"विविध वय, कद, स्वास्थ्य और रूप-रंग की स्त्रियाँ भाँति-भाँति के सोने-चाँदी के आभूषणों से सजी। हाथों में पूजा सामग्री। .... लय ताल बदली। युवतियों ने बड़े मनोयोग से गीत का अंतरा उठाया—

गंगा जी की जय-जय बोलो प्यारी सखियाँ

के चढ़ावे हार-फूल, के चढ़ावे पतियाँ।...

गीली रेत पर मिट्टी की गोल वेदी बनाई। उस पर पिठार रखा। फिर ऊपर से शुद्ध घी की पाँच पूड़ियाँ, कच्चा भीगा चना, बताशे और कुछ सिक्के चढ़ाकर हवन शुरू कर दिया.... स्त्रियाँ नये सिरे से गीत गाने लगीं।"[15] इस पूजन के बाद नौका पूजन भी किया गया और मलाह को भेंट भी दी गई। वे वरदान मांगती हैं और वरदान पूरा होने पर पुनः गंगा के किनारे आकर पूजन करती हैं। इस प्रकार वे गंगा का पूजन करने आती ही रहती हैं, गंगा उनकी संस्कृति का अभिन्न अंग है। लेखक अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण का परिचय अपने इन शब्दों में देता है—"जहाँ पारम्परिक संस्कृति का कट्टरता से पालन हो रहा है, वहाँ सड़े-गले अंशों को पूजा जा रहा है, पाश्चात्य सभ्यता के सभी कदम उनके लिए बेढंगे हैं। दूसरी ओर, नगरों में विकास की ओर बढ़ती पीढ़ी अपनी संस्कृति को बिल्कुल बेढंगा और बेकार समझकर पश्चिमी दर्शन को रामबाण समझने की गलती कर रही है।"[16] इस प्रकार के दोनों ही दृष्टिकोण अतिवादी हैं, इनसे बचना चाहिए। प्रत्येक संस्कृति में कुछ विकृतियाँ हो सकती हैं।

लेखक कोसी नदी में आने वाली बाढ़ के संबंध वहाँ जन मानस में प्रचलित मान्यता के बारे में कहते हैं कि "मजा ये कि इतने उत्पात मचाने के बाद भी दोष कोसी का नहीं, वह तो घर की बिटिया है न। सारा दोष ससुराल बंगाल के मत्थे। जनमानस की खूबियों, खामियों और आसपास के क्रिया-कलापों को किस खूबी से पिरोकर रस भरी तथ्यामक लोक-कथाओं में सँजो लिया जाता है।"[17] कोलकाता का परिचय वह अपने विशिष्ट अंदाज में इस प्रकार देते हैं कि जिससे शहर का पूरा चित्रपट सामने खुलने लगता है "हमारा पवित्र बेलूर मठ भी यहीं है। यहाँ की दुर्गा पूजा में ढोल व मृदंग की थाप पर महिषासुरमर्दिनी दुर्गा भवानी की प्रतिमाओं के सम्मुख सुगन्धित धूम्रपात्र लेकर तन्मय होकर नाचते नर्तकों की भंगिमाओं से सारे भारत में कौन नहीं परिचित है! फुटबाल के प्रेमियों और उनके झगड़ों की शोहरत भी सारे जहाँ में उजागर है। और कुछ नहीं तो हावड़ा पुल के चर्चे सबने सुने ही हैं। अखबारों के जरिए यहाँ के उद्योगों, गोदी कर्मचारियों की हड़ताल, नक्सलवाद, हर साल आने वाले भीषण समुद्री चक्रवातों की विनाश-लीला, राजनीतिक चेतना और... के बारे में भी कम-ज्यादा जानते

ही हैं।”[18] कोलकाता में हुगली नदी पहुँच कर उनकी यात्रा पूर्ण होती है।

निष्कर्ष

‘सफर एक डोंगी में डगमग’ यात्रा वृत्तांत सिर्फ एक सफर नहीं है अपितु यह एक संस्कृति की यात्रा है, नदी संस्कृति की यात्रा है जिसमें लोक जीवन की मिठास, उनके आनंद, उत्साह, मान्यताएँ, विश्वास, धर्म आदि तत्त्व समाहित हैं। इसमें लेखक ने स्थानीय भाषा बोलियों के शब्दों का प्रयोग कर उस स्थान की लोक संस्कृति को प्रकट किया है। रास्ते में आने वाले प्रत्येक नदी, घाट, गाँव का ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवरण लेखक द्वारा दिया गया है। इस प्रकार इस यात्रा वत्तांत में उत्तरी-पूर्व भारत की नदी संस्कृति को समझने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ सूची

1. कुमार, हेमंत (संपादक), समकालीन हिंदी यात्रा वृत्तांत विविध आयाम, कौटिल्य बुक्स, नई दिल्ली, 2024, पृ.सं. 65
2. माहेश्वरी, (डॉ.) कीर्ति, शोध आलेख, ‘चरथ भिक्खवे चरथ’, ‘अपनी माटी’ पत्रिका, अंक 52, अप्रैल-जून 2024
3. तिवारी, राकेश, ‘सफर एक डोंगी में डगमग’, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ.सं. 33
4. उपर्युक्त, पृ.सं. 53
5. उपर्युक्त, पृ.सं. 57
6. उपर्युक्त, पृ.सं. 64
7. ‘जनसत्ता’ दैनिक समाचार पत्र, 18 दिसम्बर, 2023
8. ‘नवभारत टाइम्स’ दैनिक समाचार पत्र, 21 जनवरी, 2024
9. तिवारी, राकेश, पूर्वोक्त, पृ.सं. 67
10. उपर्युक्त, पृ.सं. 82-83
11. उपर्युक्त, पृ.सं. 88
12. उपर्युक्त, पृ.सं. 90
13. उपर्युक्त, पृ.सं. 94-95
14. उपर्युक्त, पृ.सं. 109
15. उपर्युक्त, पृ.सं. 121
16. उपर्युक्त, पृ.सं. 125
17. उपर्युक्त, पृ.सं. 166-167
18. उपर्युक्त, पृ.सं. 198